श्रीराम के
मित्र
सुग्रीव और विभीषण





राम ... दोऊ। राखे सरन जान सबु कोऊ॥



- परम पूज्यपाद श्री रामकिंकर जी महाराज

की कामना पूर्ति का मार्ग बनाते हुए, राष्ट्रहित और समाज का कल्याण कैसे हो, ऐसा विलक्षण जीवन दर्शन परम पूज्य महाराजश्री ने प्रदान किया है।

परम पूज्य महाराजश्री ने सगुण लीला - इस धरती पर ७८ वर्षों तक की, और संप्रति वे श्रीराम की दिव्य भूमि, श्री अयोध्याधाम में सरयू के तट पर माँ जानकीजी की गोद में (रामायणम् धाम में) समाधिस्त होकर अपने सत्संकल्पों और अधूरे स्वप्नों का ऐसा दिग्दर्शन कर रहे हैं; जिसमें दिव्य चेतना और उपस्थिति का दर्शन निकट और सुदूर बैठे हुए अनेक प्रेमी सुजनों/स्वजनों को उनका अनुभव, बोध भी हो रहा है।

उनमें से ऐसे सुजन पात्र हैं - श्रीमती अंजू एवं श्री अरुण गणात्रा (लन्दन स्थित परम पूज्य महाराजश्री के निष्ठावान् भक्त दम्पति) जो परम पूज्य महाराजश्री के चिंतन को व्यापक बनाने में समर्पित हैं। उन्हीं के योगदान से ये नयी पुस्तिकायें लघुरूप में छपी हैं। ताकि समय के मारे आज की भागदौड़ में लगे हुए मानव को अमृत की एक बूँद भी मिल जाये तो भी उसका कलिकाल में कल्याण हो जायेगा। परम पूज्य महाराजश्री के चरणों में प्रार्थना है कि उनकी ऐसी सद्‌बुद्धि, सुमति, सद्‌भाव और सद्‌विचार बने रहें।

रामायणम् ट्रस्ट के सभी ट्रस्टीगण इस सद्‌कार्य में लोकमंगल के लिये समर्पित हैं। समाज के प्रत्येक वर्ग के सहयोग से, यह कठिन कार्य संभव हो पा रहा है, और यही सभी सुधी जनों से प्रार्थना है कि भविष्य में भी तन, मन, धन से आपका सहयोग निरंतर मिलता रहेगा, ऐसा विश्वास है।

आश्रमवासी सभी सेवकवृन्द अथक भाव से परम पूज्य महाराजश्री की सेवा में समर्पित हैं। श्री नरेन्द्र शुक्ल, श्री जयप्रकाश शुक्ल, श्री विनय शुक्ल, श्री टी. एन. अग्रवाल, श्री मुकेश शर्मा और श्री राधेश्याम को भी मेरा हार्दिक आशीर्वाद! अंत में परम पूज्य सद्‌गुरुदेव भगवान् के श्री चरणों में एक ही प्रार्थना -

हम चातक तुम स्वाति घन, अपनी बस यह आस।
तुम बरसौ चिरकाल तक, बुझै न मन की प्यास।।

सदैव श्री सद्‌गुरु शरण में. . .

- मन्दाकिनी श्रीरामकिंकरजी

।। श्री रामः शरणं मम ।।

महाराज श्री : एक परिचय

प्रभु की कृपा और प्रभु की वाणी का यदि कोई सार्थक पर्यायवाची शब्द ढूँढ़ा जाए, तो वह हैं - प्रज्ञापुरुष, भक्तितत्त्व द्रष्टा, सन्त प्रवर, 'परमपूज्य महाराजश्री रामकिंकर जी उपाध्याय।' अपनी अमृतमयी, धीर, गम्भीर-वाणी-माधुर्य द्वारा भक्ति रसाभिलाषी-चातकों को, जनसाधारण एवं बुद्धिजीवियों को, नानापुराण निगमागम षट्शास्त्र वेदों का दिव्य रसपान कराकर रससिक्त करते हुए, प्रतिपल निज व्यक्तित्व व चरित्र में श्रीरामचरितमानस के ब्रह्म राम की कृपामयी विभूति एवं दिव्यलीला का भावात्मक साक्षात्कार करानेवाले पूज्य महाराज श्री आधुनिक युग के परम तेजस्वी मनीषी, मानस के अद्‌भुत शिल्पकार, रामकथा के अद्वितीय अधिकारी व्याख्याकार हैं।

भक्त-हृदय, रामानुरागी पूज्य महाराजश्री ने अपने अनवरत अध्यवसाय से श्रीरामचरितमानस की मर्मस्पर्शी भाव-भागीरथी बहाकर अखिल विश्व को अनुप्राणित कर दिया है। आपने शास्त्र दर्शन, मानस के अध्ययन के लिये जो नवीन दृष्टि और दिशा प्रदान की है, वह इस युग की एक दुर्लभ अद्वितीय उपलब्धि है-

धेनवः सन्तु पन्थानः दोग्धा हुलसिनन्दनः।
दिव्यराम-कथा दुग्धं प्रस्तोता रामकिंकरः।।

जैसे पूज्य महाराजश्री का अनूठा भाव दर्शन वैसे ही उनका जीवन दर्शन अपने आप में एक सम्पूर्ण काव्य है। आपके नामकरण में ही जैसे श्री हनुमानूजी की प्रतिच्छाया दर्शित होती है, वैसे ही आपके जन्म की गाथा में ईश्वर कारण प्रकट होता है। आपका जन्म १ नवम्बर सन् १६२४ को जबलपुर (मध्यप्रदेश) में हुआ। आपके पूर्वज मिर्जापुर के बरैनी नामक गाँव के निवासी थे। आपकी माता परम भक्तिमती श्री धनेसरा देवी एवं पिता पूज्य पं. शिवनायक उपाध्यायजी रामायण के सुविज्ञ व्याख्याकार एवं हनुमानूजी महाराज के परम भक्त थे। ऐसी मान्यता है कि श्रीहनुमानूजी के प्रति उनके पूर्ण समर्पण एवं अविचल भक्तिभाव के कारण उनकी बढ़ती अवस्था में श्रीहनुमत्‌जयन्ती के ठीक सातवें दिन उन्हें एक विलक्षण प्रतिभायुक्त पुत्ररत्न की प्राप्ति दैवी कृपा से हुई। इसीलिए उनका नाम **'रामकिंकर'**

अथवा **राम का सेवक** रखा गया।

जन्म से ही होनहार व प्रखर बुद्धि के आप स्वामी रहे हैं। आपकी शिक्षा-दीक्षा जबलपुर व काशी में हुई। स्वभाव से ही अत्यन्त संकोची एवं शान्त प्रकृति के बालक रामकिंकर अपनी अवस्था के बच्चों की अपेक्षा कुछ अधिक गम्भीर थे। एकान्तप्रिय, चिन्तनरत, विलक्षण प्रतिभावाले सरल बालक अपनी शाला में अध्यापकों के भी अत्यन्त प्रिय पात्र थे। बाल्यावस्था से ही आपकी मेधाशक्ति इतनी विकसित थी कि क्लिष्ट एवं गम्भीर लेखन, देश-विदेश का विशद साहित्य अल्पकालीन अध्ययन में ही आपके स्मृति पटल पर अमिट रूप से अंकित हो जाता था। प्रारम्भ से ही पृष्ठभूमि के रूप में माता-पिता के धार्मिक विचार एवं संस्कारों का प्रभाव आप पर पड़ा, परन्तु परम्परानुसार पिता के अनुगामी वक्ता बनने का न तो उनका कोई संकल्प था, न कोई अभिरुचि।

कालान्तर में विद्यार्थी जीवन में पूज्य महाराजश्री के साथ एक ऐसी चमत्कारिक घटना हुई कि जिसके फलस्वरूप आपके जीवन ने एक नया मोड़ लिया। १८ वर्ष की अल्प अवस्था में जब पूज्य महाराजश्री अध्ययनरत थे, तब अपने कुलदेवता श्री हनुमान्‌जी महाराज का आपको अलौकिक स्वप्नदर्शन हुआ, जिसमें उन्होंने आपको वटवृक्ष के नीचे शुभासीन करके दिव्य तिलक कर आशीर्वाद देते हुए कथा सुनाने का आदेश दिया। स्थूल रूप में इस समय आप बिलासपुर में अपने पूज्य पिता के साथ छुट्टियाँ मना रहे थे। यहाँ पिताश्री की कथा चल रही थी। ईश्वरीय संकल्पानुसार परिस्थिति भी अचानक कुछ ऐसी बन गई कि अनायास ही, पूज्य महाराजश्री के श्रीमुख से भी पिताजी के स्थान पर कथा कहने का प्रस्ताव एकाएक निकल गया।

आपके द्वारा श्रोता समाज के सम्मुख यह प्रथम भाव प्रस्तुति थी। किन्तु कथन शैली व वैचारिक शृंखला कुछ ऐसी मनोहर बनी कि श्रोतासमाज विमुग्ध होकर, तन-मन व सुध-बुध खोकर उसमें अनायास ही बँध गया। आप तो रामरस की भावमाधुरी की बानगी बनाकर, वाणी का जादू कर मौन थे, किन्तु श्रोता समाज आनन्दमग्न होने पर भी अतृप्त था। इस प्रकार प्रथम प्रवचन से ही मानस प्रेमियों के अन्तर में गहरे पैठकर आपने अभिन्नता स्थापित कर ली।

ऐसा भी कहा जाता है कि २० वर्ष की अल्प अवस्था में आपने एक और स्वप्न देखा, जिसकी प्रेरणा से आपने गोस्वामी तुलसीदास के ग्रन्थों के प्रचार एवं उनकी खोजपूर्ण व्याख्या में ही अपना समस्त जीवन समर्पित कर देने का दृढ़ संकल्प कर लिया। यह बात अकाट्य है कि प्रभु की प्रेरणा और संकल्प से जिस कार्य का शुभारम्भ होता है, वह मानवीय स्तर से कुछ अलग ही गति-प्रगति वाला होता है। शैली की नवीनता व चिन्तनप्रधान विचारधारा के फलस्वरूप आप शीघ्र ही विशिष्टतः आध्यात्मिक जगत् में अत्यधिक लोकप्रिय हो गए।

ज्ञान-विज्ञान पथ में पूज्यपाद महाराजश्री की जितनी गहरी पैठ थी, उतना ही प्रबल पक्ष, भक्ति साधना का, उनके जीवन में दर्शित होता है। वैसे तो अपने संकोची स्वभाव के कारण उन्होंने अपने जीवन की दिव्य अनुभूतियों का रहस्योद्घाटन अपने श्रीमुख से बहुत आग्रह के बावजूद नहीं किया। पर कहीं-कहीं उनके जीवन के इस पक्ष की पुष्टि दूसरों के द्वारा जहाँ-तहाँ प्राप्त होती रही। उसी क्रम में उत्तराखण्ड की दिव्य भूमि ऋषिकेश में श्रीहनुमान्‌जी महाराज का प्रत्यक्ष साक्षात्कार, निष्काम भाव से किए गए, एक छोटे से अनुष्ठान के फलस्वरूप हुआ! वैसे ही श्री चित्रकूट धाम की दिव्य भूमि में अनेकानेक अलौकिक घटनाएँ परम पूज्य महाराजश्री के साथ घटित हुईं। जिनका वर्णन महाराजश्री के निकटस्थ भक्तों के द्वारा सुनने को मिला! परमपूज्य महाराजश्री अपने स्वभाव के अनुकूल ही इस विषय में सदैव मौन रहे।

प्रारम्भ में भगवान् श्रीकृष्ण की दिव्य लीलाभूमि वृन्दावन धाम के परमपूज्य महाराजश्री, ब्रह्मलीन स्वामी श्रीअखण्डानन्दजी महाराज के आदेश पर आप वहाँ कथा सुनाने गए। वहाँ एक सप्ताह तक रहने का संकल्प था। पर यहाँ के भक्त एवं साधु-सन्त समाज में आप इतने लोकप्रिय हुए कि उस तीर्थधाम ने आपको ग्यारह माह तक रोक लिया। उन्हीं दिनों में आपको वहाँ के महान् सन्त अवधूत श्रीउड़िया बाबाजी महाराज, भक्त शिरोमणि श्रीहरिबाबाजी महाराज, स्वामी श्रीअखण्डानन्दजी महाराज को भी कथा सुनाने का सौभाग्य मिला। कहा जाता है कि अवधूत पूज्य श्रीउड़िया बाबा, इस होनहार बालक के श्रीमुख से निःसृत, विस्मित कर देने वाली वाणी से इतने अधिक प्रभावित थे कि वे यह मानते थे कि यह किसी पुरुषार्थ या प्रतिभा का परिणाम न होकर के शुद्ध भगवत्कृपा का प्रसाद है। उनके शब्दों में-**''क्या तुम समझते हो, कि यह बालक बोल रहा है? इसके माध्यम से तो साक्षात् ईश्वरीय वाणी का अवतरण हुआ है।''**

इसी बीच अवधूत श्रीउड़िया बाबा से संन्यास दीक्षा ग्रहण करने का संकल्प

आपके हृदय में उदित हुआ और परमपूज्य बाबा के समक्ष अपनी इच्छा प्रकट करने पर बाबा के द्वारा लोक एवं समाज के कल्याण हेतु उन्हें शुद्ध संन्यास वृत्ति से जनमानस-सेवा की आज्ञा मिली।

सन्त आदेशानुसार एवं ईश्वरीय संकल्पानुसार मानस प्रचार-प्रसार की सेवा दिन-प्रतिदिन चारों दिशाओं में व्यापक होती गई। इसी बीच काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से आपका सम्पर्क हुआ। काशी में प्रवचन चल रहा था। इस गोष्ठी में एक दिन भारतीय पुरातत्त्व और साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान् एवं चिन्तक श्री वासुदेव शरण अग्रवाल आपकी कथा सुनने के लिये आए और आपकी विलक्षण एवं नवीन चिन्तन शैली से वे इतने अधिक प्रभावित हुए कि उन्होंने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के कुलपति श्री वेणीशंकर झा एवं रजिस्ट्रार श्री शिवनन्दनजी दर से Prodigious (विलक्षण प्रतिभायुक्त) प्रवक्ता के प्रवचन का आयोजन विश्वविद्यालय प्रांगण में रखने का आग्रह किया। आपकी विद्वत्ता इन विद्वानों के मनोमस्तिष्क को ऐसे उद्वेलित कर गई कि आपको अगले वर्ष से 'विजिटिंग प्रोफेसर' के नाते काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में व्याख्यान देने के लिये निमन्त्रित किया गया। इसी प्रकार काशी में आपका अनेक सुप्रसिद्ध साहित्यकार जैसे श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी, श्री महादेवी वर्मा से साक्षात्कार एवं शीर्षस्थ सन्तप्रवर का सान्निध्य भी प्राप्त हुआ।

परम पूज्य महाराजश्री परम्परागत कथावाचक नहीं हैं, क्योंकि कथा उनका साध्य नहीं, साधन है। उनका उद्देश्य है भारतीय जीवन पद्धति की समग्र खोज अर्थात् भारतीय मानस का साक्षात्कार। उन्होंने अपने विवेक प्रदीप्त मस्तिष्क से, विशाल परिकल्पना से श्रीरामचरितमानस के अन्तर्रहस्यों का उद्घाटन किया है। आपने जो अभूतपूर्व एवं अनूठी दिव्य दृष्टि प्रदान की है, जो भक्ति-ज्ञान का विश्लेषण तथा समन्वय, शब्द ब्रह्म के माध्यम से विश्व के सम्मुख रखा है, उस प्रकाश स्तम्भ के दिग्दर्शन में आज सारे इष्ट मार्ग आलोकित हो रहे हैं! आपके अनुपम शास्त्रीय पाण्डित्य द्वारा, न केवल आस्तिकों का ही ज्ञानवर्धन होता है अपितु नयी पीढ़ी के शंकालु युवकों में भी धर्म और कर्म का भाव संचित हो जाता है। **'कीरति भनिति भूति भलि सोई'**....के अनुरूप ही आपको ज्ञान की सुरसरि अपने उदार व्यक्तित्व से प्रबुद्ध और साधारण सभी प्रकार के लोगों में प्रवाहित करके 'बुध विश्राम' के साथ-साथ **'सकल जन रंजनी'** बनाने में यत्नरत रहे हैं। मानस सागर में बिखरे हुए विभिन्न रत्नों को सँजोकर आपने अनेक आभूषण रूपी ग्रन्थों की सृष्टि की है। मानस-मन्थन, मानस-चिन्तन, मानस-दर्पण, मानस-मुक्तावली और मानस-चरितावली जैसी आपकी अनेकानेक अमृतमयी लगभग १०० अमर कृतियाँ हैं जो दिग्दिगन्तर तक प्रचलित रहेंगी। आज भी वह लाखों लोगों को रामकथा का अनुपम पीयूष वितरण कर रही हैं और भविष्य में भी अनुप्राणित एवं प्रेरित करती रहेंगी। तदुपरान्त अन्तर्राष्ट्रीय रामायण सम्मेलन नामक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था के भी आप अध्यक्ष रहे।

निष्कर्षतः आप अपने प्रवचन, लेखन और सम्प्रति शिष्य परम्परा द्वारा जिस रामकथा पीयूष का मुक्तहस्त से वितरण कर रहे हैं, वह जन-जन के तप्त एवं शुष्क मानस में नवशक्ति का सिंचन और शान्ति प्रदान कर समाज में आध्यात्मिक एवं दार्शनिक चेतना जाग्रत् कर रही है।

परम पूज्य महाराजश्री का स्वर उसी वंशी के समान है, जो 'स्वर सन्धान' कर सभी को मन्त्रमुग्ध कर देती है। वंशी में भगवान् का स्वर ही गूँजता है। उसका कोई अपना स्वर नहीं होता। परमपूज्य महाराजश्री भी एक ऐसी ही वंशी हैं, जिसमें भगवान् के स्वर का स्पन्दन होता है। साथ-साथ उनकी वाणी के तरकश से निकले, वे तीक्ष्ण विवेक के बाण अज्ञान-मोह-जन्य पीड़ित जीवों की भ्रान्तियों, दुर्वृत्तियों एवं दोषों का संहार करते हैं। यों आप श्रद्धा और भक्ति की निर्मल मन्दाकिनी प्रवाहित करते हुए महान् लोक-कल्याणकारी कार्य सम्पन्न कर रहे हैं।

रामायणम् ट्रस्ट परम पूज्य महाराजश्री रामकिंकरजी द्वारा संस्थापित एक ऐसी संस्था है जो तुलसी साहित्य और उसके महत् उद्देश्यों को समर्पित है। मेरा मानना है कि परम पूज्य महाराजश्री की लेखनी से ही तुलसीदासजी को पढ़ा जा सकता है और उन्हीं की वाणी से उन्हें सुना भी जा सकता है। महाराजश्री के साहित्य और चिन्तन को समझे बिना तुलसीदासजी के हृदय को समझ पाना असम्भव है।

रामायणम् आश्रम अयोध्या जहाँ महाराजश्री ने ६ अगस्त सन् २००२ को समाधि ली वहाँ पर अनेकों मत-मतान्तरों वाले लोग जब साहित्य प्राप्त करने आते हैं तो महाराजश्री के प्रति वे ऐसी भावनाएँ उड़ेलते हैं कि मन होता है कि महाराजश्री को इन्हीं की दृष्टि से देखना चाहिए। वे अपना सबकुछ न्यौछावर करना चाहते हैं उनके चिन्तन पर। महाराजश्री के चिन्तन ने रामचरितमानस के पूरे घटनाक्रम को और प्रत्येक पात्र की मानसिकता को जिस तरह से प्रस्तुत किया है उसको

पढ़कर आपको ऐसा लगेगा कि आप उस युग के एक नागरिक हैं और वे घटनाएँ आपके जीवन का सत्य हैं।

हम उन सभी श्रेष्ठ वक्ताओं के प्रति भी अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं जो महाराजश्री के चिन्तन को पढ़कर प्रवचन करते हैं और मंच से उनका नाम बोलकर उनकी भावनात्मक आरती उतारकर अपने बड़प्पन का परिचय देते हैं।

रामायणम् ट्रस्ट के सभी ट्रस्टीगण इस भावना से ओत-प्रोत हैं कि ट्रस्ट की सबसे प्रमुख सेवा यही होनी चाहिए कि वह एक स्वस्थ चिन्तन के प्रचार-प्रसार में जनता को दिशा एवं दृष्टि दे और ऐसा सन्तुलित चिन्तन परम पूज्य श्रीरामकिंकरजी महाराज में प्रकाशित होता और प्रकाशित करता दिखता है। सभी पाठकों के प्रति मेरी हार्दिक मंगलकामनाएँ!

प्रभु की शरण में
- मन्दाकिनी श्रीरामकिंकरजी

वन्दनीय शाश्वत परम्परा

विश्व आज भयानक सांस्कृतिक संकट से गुजर रहा है। इस सोचनीय अवस्था से मुक्त होने का साधन साहित्य ही हो सकता है, क्योंकि साहित्य में ही जन-मानस को परिष्कृत करने और रचनात्मक दिशा-दर्शन की क्षमता होती है। त्रिकालज्ञ ऋषियों की आप्त वाणी से लेकर आज तक श्रेष्ठ साहित्य ही मानव-मुक्ति और मानवीय विकास साधना का आधार बनता रहा है।

प्रभु श्रीराम भारतीय संस्कृति के प्राण-पुरुष और सनातन सत्य हैं। इसे संयोग ही कहा जा सकता है कि उनका अवतरण और **'विजयोत्सव'** दोनों ही **'बसंत'** के उजियारे पखवारे (शुक्ल पक्ष) में होता है और दोनों पखवारे **'शक्ति'** की आराधना के पखवारे हैं।

मंगल के अधिष्ठान प्रभु श्रीराम के स्मरण मात्र से परायापन दूर हो जाता है। गोस्वामी तुलसीदास जी भी कहते है - **''अपनो भलो, राम नामहिं तें, तुलसी समझि परो''** यही कारण है कि उनका काव्य **अपनाव** (अपनेपन/आत्मीयता) का काव्य है। वे संसार को ही **सियाराम मय** मानकर प्रणाम भी करते हैं। जिसे राम से प्रेम है वही संत है और सबका प्रेम-पात्र भी।

परम पूज्य पं. रामकिंकर जी महाराज जिनका सारा जीवन ही श्रीराम की कृपा से संचालित हुआ, उन्होंने **'शील सिन्धु राघव, माधुर्य मूर्ति माधव'** ग्रंथ में **'अपनी बात'** शीर्षक के अंतर्गत स्पष्ट रूपेण लिखा है कि - **''श्रीराम और श्रीरामचरित मानस से मेरा परिचय कितना पुराना है मेरे लिये बता पाना संभव नहीं है।''** युग तुलसी की संज्ञा से विभूषित महाराजश्री ने **'मानस मुक्तावली'** की भूमिका में स्वीकार किया है कि - **''मैं स्वयं को तुलसी के अंतरमन से इतना जुड़ा हुआ पाता हूँ कि घूम-फिर कर मैं स्वयं को भी उसी मनःस्थिति में एकाकार कर लेता हूँ।''** विचारणीय यह है कि महाराजश्री ने इस सबके बावजूद भी अपने आध्यात्मिक चिंतन और सत्यानुभूतियों से यह सिद्ध किया है कि परम्परा पूर्वपरता नहीं है। परम्परा तो अग्रसरीय होती है उसमें सृजन का गति-सातत्य तो होता ही है नवीनता भी परिलक्षित

होती है इसीलिए महाराजश्री के साहित्य में तथ्य, सत्य और ये दोनों ही कथ्य के रूप में मूर्तिमान हैं।

तप के लिये मन, संकल्प और उद्देश्य आवश्यक होता है। महाराश्री की साधना और उनके प्रवचन-साहित्य में इन तीनों का समावेश है। महाराजश्री ने लेखन से प्रकाशन तक शीर्षक में आबद्ध अपने आत्म कथात्मक लेख में लिखा है - ''श्रवण, मनन, चिन्तन का यह क्रम चलता ही रहा XXX मैं भी अपनी लेखनी धन्य बनाऊँ ऐसा संकल्प बार-बार आता रहा। श्रीमद्भागवत और श्रीरामचरित मानस दोनों ही भगवान् के वाङ्मय विग्रह हैं और प्रवचन लेखन वे पुष्प है जो उनके चरणों में अर्पित किये जाते हैं।''

इस प्रकार उनका साहित्य वाङ्मयी आराधना ही है जिसमें वे लिखते हैं - संसार में मनुष्य जीवन में जितने भी दुःख है उन सबके कारण रूप में मनुष्य के भीतर विद्यमान राग, द्वेष और भेदबुद्धि भी है। XXX संसारी व्यक्ति का अपना दुःख और अपना सुख होता है। संसारी व्यक्ति **'स्व'** के सुख में सुखी होता है और **'पर'** के सुख में दुःखी होता है। कभी-कभी **'पर'** के दुःख से प्रसन्न भी होता है किन्तु साधु अथवा **संत** अपने दुःख से नहीं **'पर'** (दूसरे) के दुःख से दुःखी होता है यही दोनों में अंतर है।

संतत्व के पर्याय परम पूज्य पं. रामकिंकर जी महाराज के आदर्शों का अनुगमन करते हुये **पूज्य दीदी मंदाकिनी श्री रामकिंकर जी** जहाँ राम-कथा मंचों से आज पूरे देश में राम कथा अमृत का पान करा रही हैं वहीं वे महाराजश्री के साहित्य को जन-जन तक पहुँचाने के लिए निरंतर प्रयासरत भी हैं। **यह शाश्वत परम्परा वंदनीय है।** महाराजश्री की साधना से सुवासित और संतत्व की गरिमा से मण्डित राम-साहित्य आपके जीवन-पथ को सुगम और सारगर्भित बनाने की रहस्यानुभूतियाँ तो करायेगा ही सभी प्रकार से मंगलकारी भी सिद्ध होगा।

राम-कथा की इस शाश्वत परम्परा को प्रणाम निवेदित करते हुए -

गुरु चरण अनुरागी

- डॉ. सत्यनारायण 'प्रसाद'

जबलपुर

॥श्रीरामः शरणं मम॥

श्रीराम के मित्र सुग्रीव और विभीषण

'श्रीरामचरितमानस' में एक ओर श्रीसुग्रीव का चरित है और दूसरी ओर श्रीविभीषण हैं और दोनों के चरित में जो भगवान् का मिलन होता है, उस मिलन में श्रीहनुमान्‌जी ही मुख्य कारण बनते हैं। फिर भी सुग्रीव और विभीषण के चरित में अन्तर है और उस अन्तर का मुख्य तात्पर्य यह है कि भगवत्प्राप्ति के लिए किसी एक विशेष प्रकार के चरित और व्यक्ति का वर्णन किया जाय तो उसको सुनने वाले या पढ़ने वाले के मन में ऐसा लगता है कि इस चरित्र में जो सद्‌गुण हैं, जो विशेषताएँ हैं, वे हमारे जीवन में नहीं हैं और यदि किसी विशेष प्रकार के सद्‌गुण के द्वारा ही ईश्वर को पाया जा सकता है तो हम ईश्वर की प्राप्ति के अधिकारी नहीं हैं।

प्रस्तुत भ्रम का निराकरण करने के लिए 'श्रीरामचरितमानस' में न जाने कितने पात्रों की सृष्टि की गयी है, उनके चरित्र का वर्णन किया गया है और यदि उन पर दृष्टि डालें तो उनके आचार में, उनके स्वभाव में एवं गुण में एक-दूसरे से भिन्नता-ही-भिन्नता दिखायी देती है, पर सर्वथा भिन्नता दिखायी देने पर भी जब उन्हें भगवत्प्राप्ति होती है तो इसके द्वारा संसार के समस्त जीवों को यह आश्वासन मिलता है कि भगवत्प्राप्ति के लिए किसी एक प्रकार के विशेष व्यक्तित्व की ही अपेक्षा नहीं है। मानो जो व्यक्ति जैसा भी है, उस रूप में ही वह भगवान् को प्राप्त कर लेता है।

विभीषण और सुग्रीव के चरित्र में भी बड़ी भिन्नता है। विभीषण लंका की प्रतिकूल परिस्थितियों में रहकर भी भगवान् की पूजा करते

हैं, भगवान् का भजन करते हैं। विभीषण के लिए हम कह सकते हैं कि वे ऐसे जीव हैं कि जो साधक हैं। उनकी साधना का जो वर्णन किया गया है, वह बड़ा सांकेतिक है। विभीषण पूर्वजन्म में धर्मरुचि थे और उस समय वे प्रतापभानु नाम के धर्मात्मा राजा के मन्त्री थे। उस समय भी उनका यही वर्णन किया गया है कि–

सचिव धरमरुचि हरि पद प्रीती।
नृप हित हेतु सिखव नित नीती।।१/१५४/३

धर्मरुचि की धर्म में अत्यन्त रुचि थी, नाम ही ऐसा है और वे राजा प्रतापभानु को निरन्तर नीति की ही प्रेरणा देते रहते थे। प्रतापभानु के चरित्र में 'श्रीरामचरितमानस' में दो संकेत बड़े महत्त्व के दिये गये हैं, जिनमें दोनों पक्ष प्रकट किये गये हैं। जब भी रावण और कुम्भकर्ण का वर्णन किया गया तो यह अवश्य बताया गया कि वे पूर्वजन्म में क्या थे? यद्यपि यह नहीं लिखा जाता तो भी कुछ विशेष अन्तर नहीं पड़ता, पर 'रामायण' में इस बात पर बड़ा बल दिया गया है कि रावण और कुम्भकर्ण के रूप में हम जिन दो पात्रों को देखते हैं, वे पूर्वजन्म में कौन थे?

प्रतापभानु और अरिमर्दन नाम के दो धर्मात्मा राजा थे और वे ही आगे चलकर रावण और कुम्भकरण के रूप में राक्षस बनकर जन्म लेते हैं, या यह कहा गया कि शंकरजी के दो गण थे, वे रावण और कुम्भकर्ण बनते हैं, या यह कहा गया कि भगवान् विष्णु के द्वारपाल जय और विजय रावण और कुम्भकर्ण बने। यह बताने का मुख्य तात्पर्य यह है कि वस्तुतः जीव मूलतः बुरा नहीं है। रावण और कुम्भकर्ण भी पूर्व जन्म में जय और विजय थे। जो भगवान् के द्वारपाल हैं, देवताओं में शिरोमणि हैं। रुद्रगण भी देवता हैं और प्रतापभानु एक श्रेष्ठ उदात्त चरित्र वाला मनुष्य है। उसका राक्षस के रूप में परिणत हो जाना या जो भगवान् शंकर के या भगवान् विष्णु के पार्षद हैं, उनका राक्षस के रूप में परिणत हो जाने में मूल तात्त्विक अभिप्राय क्या है? इसमें दो बातें बड़े महत्त्व की हैं।

मूल रूप में वे जय और विजय हैं या शंकरजी के गण हैं, या

प्रतापभानु और अरिमर्दन हैं, लेकिन मध्य में वे राक्षस बन जाते हैं और फिर अन्त में क्या होता है? यहाँ आदि और अन्त को मिलाया गया है। अन्त में ऐसा वर्णन आता है कि जब रावण की मृत्यु होती है तो रावण का तेज निकलकर भगवान् में विलीन हो जाता है, भगवान् में समा जाता है। इसका मूल तात्त्विक तात्पर्य यह है कि जीव जब ईश्वर का अंश है तो मूलतः वह पवित्र होगा ही। जीव क्या है?

ईस्वर अंस जीव अबिनासी।
चेतन अमल सहज सुख रासी।।७/११६/२

अविनाशी, चेतन, निर्मल और स्वभाव से ही सुख की राशि के रूप में जिस जीव का वर्णन किया गया है, वह जीव अपने मूल रूप में शुद्ध, बुद्ध एवं मुक्त है। यही सत्य इन पात्रों के जीवन के माध्यम से बताया गया है और अन्त में भी उसी स्थिति की प्राप्ति होती है जिसमें जीव एवं ब्रह्म से एकत्व का उदय होता है, लेकिन मध्य में ऐसी स्थिति है कि जब वह अपने अन्तःकरण की दुर्वृत्तियों के कारण मलिन और अशुद्ध जैसा प्रतीत होता है और देवत्व और मनुष्यत्व से गिर करके राक्षसत्व में आ जाता है।

कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि व्यक्ति में बुराई तो स्वाभाविक है और सद्‌गुणों के लिए उसे प्रयत्न करना पड़ता है, पर यदि आध्यात्मिक दृष्टि से विचार करके देखें तो जीव मूलतः शुद्ध है, केवल मध्य में ही वह रावण, कुम्भकर्ण और मेघनाद बन जाता है। रावण मूर्तिमान् मोह है, कुम्भकर्ण मूर्तिमान् अहंकार है और मेघनाद मूर्तिमान् काम है। शुद्ध जीव जब मोहग्रस्त होता है, अभिमानग्रस्त होता है, कामग्रस्त होता है तब उसके जीवन में राक्षसत्व दिखायी देता है और अन्त में उस राक्षसत्व का विनाश कैसे होता है? इसी पद्धति का 'श्रीरामचरितमानस' में वर्णन किया गया है।

विभीषण के पूर्वजन्म में धर्मरुचि के रूप में उसकी धर्म में बड़ी रुचि थी, लेकिन प्रतापभानु के जीवन में ऐसी अज्ञान की वृत्ति दिखायी देती है कि जब कपटमुनि ने पूछा कि तुम्हें क्या चाहिए? तब उसने यह कहा कि मुझे अमर बना दीजिए। सत्य तो यह है कि प्रतापभानु

ने देह को ही आत्मा मान लिया है और इसीलिए इसका शुद्ध तात्पर्य यह हुआ कि देहाभिमान की जो वृत्ति है, उसके कारण ही प्रतापभानु अन्त में राक्षस के रूप में परिणत हो जाता है और दूसरी ओर धर्मरुचि नाम के जो प्रतापभानु के मन्त्री थे, वे विभीषण के रूप में जन्म लेते हैं। इसमें साधना का एक क्रम है। धर्मरुचि नाम का अर्थ यह है कि साधना के क्रम में सबसे पहले व्यक्ति के अन्तःकरण में धर्म के प्रति रुचि होनी चाहिए। धर्म के प्रति आकर्षण होना चाहिए और फिर उसका परिणाम क्या होगा? इसका क्रम है–

धर्म तें बिरति जोग तें ग्याना।
ग्यान मोच्छप्रद बेद बखाना।।३/१५/१

विभीषण के रूप में जब वे जन्म लेते हैं तब ब्रह्मा तथा शंकर रावण, कुम्भकर्ण और मेघनाद को वरदान देने के लिए आते हैं। फिर वहाँ पर बड़ा सुन्दर संकेत है कि तीनों की साधना समान थी, तीनों की तपस्या समान थी, लेकिन उस साधना और तपस्या के द्वारा उन तीनों ने अलग-अलग वस्तुएँ प्राप्त कीं। यहाँ पर भी मुख्य सूत्र वही है कि अगर कोई यह समझता हो कि भगवान् की प्राप्ति अत्यन्त कठिन है तो यह सही नहीं है। इसका अभिप्राय तो यह हुआ कि रावण ने जो किया, कुम्भकर्ण ने जो साधना की, वही साधना विभीषण ने भी की।

इसका तात्पर्य यह है कि हमारे पास वस्तुएँ तो सब वही हैं जिसके द्वारा हम भगवान् को प्राप्त कर सकते हैं, लेकिन हम अपने जीव की साधना के द्वारा क्या प्राप्त करना चाहते हैं? इसका सबसे अधिक महत्त्व है। रावण प्रतापभानु के रूप में देहाभिमान है। जीव ने अपने आपको देह से अभिन्न मानकर, देह को ही जब 'मैं' स्वीकार कर लिया, तब वही देहाभिमान रावण के जीवन में ब्रह्मा और शंकर को देखने के बाद भी विद्यमान रहता है। रावण यही वरदान माँगता है कि यदि आप हमारे ऊपर प्रसन्न हैं तो–

हम काहू के मरहिं न मारें।१/१७६/४

हम किसी के मारने पर न मरें। इसका अर्थ है कि मैं देह हूँ क्योंकि देह के ही मरने का डर है, आत्मा तो अविनाशी है। रावण यदि अपने

को अविनाशी आत्मा के रूप में देखता होता तो **'मैं अमर हो जाऊँ'** यह आकांक्षा न रहती, पर पूर्वजन्म में जिस भूल के कारण उसका पतन हुआ, वह भूल उसमें और भी गहरी बनी हुई है। रावण एवं कुम्भकर्ण में देहाभिमान के दो पक्ष हो गये। एक ने नींद माँग ली और दूसरे ने भोग माँग लिया। जीवन के दो पक्ष दोनों ने स्वीकार कर लिये। कुम्भकर्ण ने छः महीने की नींद माँग ली और रावण ने शरीर को अमर बनाने की चेष्टा की। व्यंग्य यह है कि इतनी बड़ी तपस्या और साधना के बाद ऐसी वस्तु माँग ली कि जिसके माँगने का कोई अर्थ ही नहीं है। इसलिए जब शंकरजी वर देने के बाद लौटकर आये तो पार्वतीजी ने पूछा कि रावण ने क्या माँगा? शंकरजी ने कहा कि क्या बतायें कि क्या माँगा? रावण ने तो मुझसे अपनी मृत्यु ही माँग ली। 'रामायण' में शब्द आते हैं कि–

रावन मरन मनुज कर जाचा।१/४८/१

शरीर तो कभी अमर होता नहीं, रावण ने अमर होने की चेष्टा में यह कहकर कि मनुष्य और बन्दर को छोड़कर हम किसी के मारे न मरें तो रावण की यह गणित थी कि मनुष्य और बन्दर तो हमारे भोजन हैं, भोजन से तो शरीर में शक्ति बढ़ती है। इससे शंकरजी को हँसी आयी कि भोजन से लोग मरते नहीं हैं क्या? स्वास्थ्य विषयक सिद्धान्त है कि भोजन न करने से जितने लोग मरते हैं उससे कहीं अधिक लोग ज्यादा भोजन करने से मरते हैं। यही मोहग्रस्तता है। रावण इतना बड़ा पण्डित है, इतने शास्त्र उसने पढ़े और देखा कि आज तक कोई अमर नहीं हो पाया, दैत्यों का इतिहास भी उसके सामने था, राक्षसों का इतिहास भी उसके सामने था, लेकिन उसने सोचा कि भले ही और कोई न हुआ हो, पर मैं तो हो ही जाऊँगा, यही रावणत्व है। जब हम यह मानकर चलते हैं कि जो अमरता विश्व के इतिहास में सम्भव नहीं हुई, उस अमरता को हम पा लेंगे तो यह आश्चर्य है। यही आश्चर्य 'महाभारत' में बताया गया। युधिष्ठिर ने यक्ष से यही कहा था कि कितना आश्चर्य है कि–

अहन्यहनि भूतानि गच्छन्तीह यमालयम्।

ने देह को ही आत्मा मान लिया है और इसीलिए इसका शुद्ध तात्पर्य यह हुआ कि देहाभिमान की जो वृत्ति है, उसके कारण ही प्रतापभानु अन्त में राक्षस के रूप में परिणत हो जाता है और दूसरी ओर धर्मरुचि नाम के जो प्रतापभानु के मन्त्री थे, वे विभीषण के रूप में जन्म लेते हैं। इसमें साधना का एक क्रम है। धर्मरुचि नाम का अर्थ यह है कि साधना के क्रम में सबसे पहले व्यक्ति के अन्तःकरण में धर्म के प्रति रुचि होनी चाहिए। धर्म के प्रति आकर्षण होना चाहिए और फिर उसका परिणाम क्या होगा? इसका क्रम है—

धर्म तें बिरति जोग तें ग्याना।
ग्यान मोच्छप्रद बेद बखाना।।३/१५/१

विभीषण के रूप में जब वे जन्म लेते हैं तब ब्रह्मा तथा शंकर रावण, कुम्भकर्ण और मेघनाद को वरदान देने के लिए आते हैं। फिर वहाँ पर बड़ा सुन्दर संकेत है कि तीनों की साधना समान थी, तीनों की तपस्या समान थी, लेकिन उस साधना और तपस्या के द्वारा उन तीनों ने अलग-अलग वस्तुएँ प्राप्त कीं। यहाँ पर भी मुख्य सूत्र वही है कि अगर कोई यह समझता हो कि भगवान् की प्राप्ति अत्यन्त कठिन है तो यह सही नहीं है। इसका अभिप्राय तो यह हुआ कि रावण ने जो किया, कुम्भकर्ण ने जो साधना की, वही साधना विभीषण ने भी की।

इसका तात्पर्य यह है कि हमारे पास वस्तुएँ तो सब वही हैं जिसके द्वारा हम भगवान् को प्राप्त कर सकते हैं, लेकिन हम अपने जीव की साधना के द्वारा क्या प्राप्त करना चाहते हैं? इसका सबसे अधिक महत्त्व है। रावण प्रतापभानु के रूप में देहाभिमान है। जीव ने अपने आपको देह से अभिन्न मानकर, देह को ही जब 'मैं' स्वीकार कर लिया, तब वही देहाभिमान रावण के जीवन में ब्रह्मा और शंकर को देखने के बाद भी विद्यमान रहता है। रावण यही वरदान माँगता है कि यदि आप हमारे ऊपर प्रसन्न हैं तो—

हम काहू के मरहिं न मारें।१/१७६/४

हम किसी के मारने पर न मरें। इसका अर्थ है कि मैं देह हूँ क्योंकि देह के ही मरने का डर है, आत्मा तो अविनाशी है। रावण यदि अपने

को अविनाशी आत्मा के रूप में देखता होता तो 'मैं अमर हो जाऊँ' यह आकांक्षा न रहती, पर पूर्वजन्म में जिस भूल के कारण उसका पतन हुआ, वह भूल उसमें और भी गहरी बनी हुई है। रावण एवं कुम्भकर्ण में देहाभिमान के दो पक्ष हो गये। एक ने नींद माँग ली और दूसरे ने भोग माँग लिया। जीवन के दो पक्ष दोनों ने स्वीकार कर लिये। कुम्भकर्ण ने छः महीने की नींद माँग ली और रावण ने शरीर को अमर बनाने की चेष्टा की। व्यंग्य यह है कि इतनी बड़ी तपस्या और साधना के बाद ऐसी वस्तु माँग ली कि जिसके माँगने का कोई अर्थ ही नहीं है। इसलिए जब शंकरजी वर देने के बाद लौटकर आये तो पार्वतीजी ने पूछा कि रावण ने क्या माँगा? शंकरजी ने कहा कि क्या बतायें कि क्या माँगा? रावण ने तो मुझसे अपनी मृत्यु ही माँग ली। 'रामायण' में शब्द आते हैं कि—

रावन मरन मनुज कर जाचा।१/४८/१

शरीर तो कभी अमर होता नहीं, रावण ने अमर होने की चेष्टा में यह कहकर कि मनुष्य और बन्दर को छोड़कर हम किसी के मारे न मरें तो रावण की यह गणित थी कि मनुष्य और बन्दर तो हमारे भोजन हैं, भोजन से तो शरीर में शक्ति बढ़ती है। इससे शंकरजी को हँसी आयी कि भोजन से लोग मरते नहीं हैं क्या? स्वास्थ्य विषयक सिद्धान्त है कि भोजन न करने से जितने लोग मरते हैं उससे कहीं अधिक लोग ज्यादा भोजन करने से मरते हैं। यही मोहग्रस्तता है। रावण इतना बड़ा पण्डित है, इतने शास्त्र उसने पढ़े और देखा कि आज तक कोई अमर नहीं हो पाया, दैत्यों का इतिहास भी उसके सामने था, राक्षसों का इतिहास भी उसके सामने था, लेकिन उसने सोचा कि भले ही और कोई न हुआ हो, पर मैं तो हो ही जाऊँगा, यही रावणत्व है। जब हम यह मानकर चलते हैं कि जो अमरता विश्व के इतिहास में सम्भव नहीं हुई, उस अमरता को हम पा लेंगे तो यह आश्चर्य है। यही आश्चर्य 'महाभारत' में बताया गया। युधिष्ठिर ने यक्ष से यही कहा था कि कितना आश्चर्य है कि—

अहन्यहनि भूतानि गच्छन्तीह यमालयम्।

शेषाः स्थावरमिच्छन्ति किमाश्चर्यमतः परम्।।

—महाभारत

हम देख रहे हैं कि हमारे सामने लोग मरते चले जा रहे हैं, लेकिन जो बचे हुए हैं उनको देखकर ऐसा प्रतीत नहीं होता कि वे भी मरेंगे। रावण की भूल केवल रावण की ही भूल थोड़ी है! यह भूल तो न जाने कितने लोगों के जीवन में है। इसके लिए क्या कहा जाय? रावण की यह वृत्ति कितनी व्यापक है? हमारे जीवन में वस्तुतः सब कुछ है, ईश्वर को पाने के लिए जो कुछ चाहिए, उसमें ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो न हो। शास्त्रों ने बहुत बढ़िया बात कही कि निष्काम होना चाहिए, त्यागी होना चाहिए। निष्कामता और त्याग से भगवान् मिलेंगे, यह तो ठीक है, लेकिन गोस्वामीजी उलट कर दूसरी बात भी कहते हैं। भगवान् ने उनसे पूछा कि तुमने मेरा चरित्र लिखा है, मैं तुमको क्या दूँ? तो उन्होंने यही कहा कि मुझे अपने चरणों में प्रेम दीजिए! पूछा कि कैसा प्रेम चाहते हो? भरतजी की तरह, लक्ष्मणजी की तरह, कि हनुमान्‌जी की तरह? गोस्वामीजी ने कहा कि प्रभो! मैं कैसे कहूँ? क्या उनमें से किसी के चरित्र से मेरी तुलना हो सकती है! उनके आचरण से मेरी तुलना हो सकती है क्या? फिर कैसे प्रेम पाओगे? गोस्वामीजी ने दोहा लिखा—

कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम।।७/१३०ख

भरतजी, लक्ष्मणजी, हनुमान्‌जी या अन्य किसी भक्त का नाम नहीं लिया, बल्कि कहा कि कामी को सौन्दर्य के प्रति जैसा आकर्षण होता है, लोभी के मन में धन के प्रति जैसा आकर्षण होता है, उसी प्रकार मुझे आपके प्रति आकर्षण हो। मानो इसका अभिप्राय यह है कि काम और लोभ की वृत्तियों को भी अगर मोड़ दिया जाय, तब भी कल्याण सम्भव है। निष्कामता और त्याग की वृत्ति तो सार्थक है ही, पर लोभ और काम की वृत्ति भी मुड़ करके ईश्वर की प्राप्ति कराने वाली बन सकती है, इसकी ओर संकेत है। रावण को शूर्पणखा ने समाचार दिया कि चौदह हजार राक्षसों को राम ने अकेले ही मार दिया। रावण सोचने लगा कि इनको मारने वाला कौन हो सकता है?

निर्णय हुआ कि—

तिन्हहि को मारइ बिनु भगवन्ता।३/२२/२

भगवान् को छोड़कर उन्हें कौन मार सकता है? विवेक ने तुरन्त कहा कि जब भगवान् का अवतार हो गया है तो भगवान् का भजन करो, लेकिन रावण ने बहाना बनाया—

होइहि भजनु न तामस देहा।३/२२/५

जीवन की इतनी बड़ी-बड़ी कठिन यात्रा, लड़ाई तो वह लड़ सकता है, पर वह कहता है कि भई! हमसे भजन नहीं होगा। इसका अर्थ है कि वस्तुतः रावण अपनी क्षमताओं का दुरुपयोग करता है। ऐसा कोई व्यक्ति ही नहीं है कि जो भगवत्प्राप्ति का अधिकारी न हो। जब ब्रह्माजी और शंकरजी वरदान देने के लिए आकर खड़े हुए तो रावण ने सोचा कि ये दो क्यों आये हैं? मैंने तो दो को अपनी तपस्या के द्वारा नहीं बुलाया। रावण को लगा कि शायद सावधानी के लिए दोनों आये होंगे कि यह राक्षस ऐसा कुछ न माँग ले और शंकरजी ठगे न जायँ, जैसा कि वे कभी-कभी ठगे जाते हैं। ब्रह्माजी शायद इसलिए साथ में आये हुए हैं कि शंकरजी कभी-कभी भूले-भटके अनुचित वरदान दे देते हैं, यदि शंकरजी ऐसा-वैसा कुछ देने लगेंगे तो मैं सँभाल लूँगा, लेकिन रावण ने सोचा कि ये दोनों मिलकर भी क्या कर लेंगे? ब्रह्मा के चार सिर और शंकरजी के पाँच सिर हैं, दोनों मिलाकर भी नौ ही सिर हुए, लेकिन मेरे तो अकेले ही दस सिर हैं। मुझसे एक सिर कम ही है। यह नौ और दस क्या है? यही तो रावण समझ नहीं पाया। अगर रावण यह समझ पाता कि दस की सार्थकता नौ में है तो कल्याण हो जाता। 'रामायण' में दशरथ हैं, पर दशरथ को अपने जीवन में अभाव की अनुभूति होती है और उनको पूर्णता की अनुभूति कब होती है? जब रामनवमी आयी, दस ने जब नौ का आश्रय लिया, नवधाभक्ति का आश्रय लिया, लिखा हुआ है कि—

दसरथ पुत्रजन्म सुनि काना।
मानहुँ ब्रह्मानन्द समाना।।
परम प्रेम मन पुलक सरीरा।

चाहत उठन करत गति धीरा।।१/१६२/३-४

यदि रावण तुलना करता तो समझकर करता कि नौ इसलिए आये हैं कि मेरे जीवन में भक्ति की पूर्णता आये। भगवान् शंकर विश्वास के देवता हैं तो ब्रह्मा विचार के देवता हैं। हमारे जीवन में विश्वास और विचार का उदय होना चाहिए, पर रावण तो अपने को उन दोनों से अधिक बुद्धिमान् मानता है। जब ब्रह्मा और शंकर विभीषण के समक्ष खड़े हुए थे तो विभीषण को लगा कि यह तो नव का अंक सामने दिखायी दे रहा है। उन्होंने पूछा कि पुत्र विभीषण! तुम क्या चाहते हो? विभीषण ने क्या माँगा?

गए बिभीषन पास पुनि कहेउ पुत्र बर मागु।
तेहि मागेउ भगवंत पद कमल अमल अनुरागु।।१/१७७

भगवान् के चरणों में मेरी भक्ति हो, मेरी प्रीति हो, आप ऐसा वरदान दीजिए। मानो विभीषण ने अपने विवेक का सदुपयोग किया और भगवान् के चरणों में प्रेम का वरदान माँगा, पर विभीषण साधक वृत्ति वाले हैं, वे भजन एवं साधन तो करते हैं, पर रावण एवं कुम्भकर्ण का साथ वे नहीं छोड़ते। ऐसे अनेक लोग होते हैं। साधक की समस्या यही है कि उसका लक्ष्य तो भगवत्प्राप्ति है, परन्तु वह कुछ ऐसी परिस्थितियों से घिरा हुआ है कि वह रावण एवं कुम्भकर्ण का साथ नहीं छोड़ पाता। विभीषण की जो समस्या थी, वही सारे साधकों की समस्या है, सारे जीवों की समस्या है और वह समस्या यह है कि हम न चाहते हुए भी पाप कर बैठते हैं जैसा 'गीता' में कहा गया है कि–

अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः।

–गीता

हम कुछ काम करना नहीं चाहते, लेकिन ऐसा लगता है कि जैसे बलपूर्वक हमसे कोई कार्य कराया जा रहा है। हम चाहते हैं कि बुराइयाँ हमसे छूट जायँ, लेकिन हम उनको छोड़ पाने में असमर्थ हो जाते हैं। विभीषण की स्थिति भी कुछ उसी प्रकार की है और जो सुग्रीव हैं, ये तो विषयी हैं। सुग्रीव के जीवन में तो विषयी जीव के जो लक्षण हैं वे सारे लक्षण विद्यमान हैं। प्रारम्भ से ही उनके मन में भक्ति या

भगवान् के प्रति कोई आकर्षण हो, ऐसा नहीं है। वे बालि के छोटे भाई हैं, पर उनका चरित्र बालि से बिल्कुल भिन्न है। ये दोनों भाई बिल्कुल एक-दूसरे से उल्टे दिखायी देते हैं।

बालि कितना बड़ा योद्धा, दृढ़ निश्चयी और साहसी है कि वह कभी पीछे नहीं हटता और किसी की चुनौती से भागता नहीं है। यह बालि के चरित्र में आपको सर्वत्र मिलेगा कि चाहे रावण चुनौती दे या मायावी चुनौती दे, बालि उस चुनौती से संघर्ष करता है। बालि जितने बड़े वीर हैं, सुग्रीव उतना ही बड़ा भगोड़ा है। उसके जीवन का सारा इतिहास भागने से ही भरा पड़ा है। कैसी अनोखी बात है कि भाई के रूप में एक भगोड़ा और एक न भागने वाला और विचित्र बात आप देखेंगे कि अन्त में दोनों ने ही ईश्वर को प्राप्त किया। कुछ लोग ऐसे होते हैं कि जो परिस्थितियों से जूझते हैं, संघर्ष करते हैं और कुछ लोग ऐसे होते हैं कि जब कभी कोई जटिल समस्या सामने आती है तो वे भाग खड़े होते हैं। सुग्रीव उन्हीं लोगों में से है।

बालि को मायावी ने आधी रात को ललकारा। वह लड़ने के लिए निकल पड़ा। सुग्रीव को भी जोश आया कि भाई लड़ने गया है तो हम भी तो चलें। सुग्रीव भी पीछे-पीछे चला, पर कहाँ तक? मायावी तो गुफा में पैठ गया। तब बालि ने सुग्रीव से कहा कि तुम बाहर ही रह जाओ। यह तो सुग्रीव के मन की बात थी। कहा कि जो आज्ञा। कुछ लोग आज्ञा तभी मानते हैं जब वह आज्ञा उनकी वृत्ति का पोषण करे। सुग्रीव भीतर नहीं जा रहे थे कायरता के कारण और नाम ले दिया आज्ञा का। बालि ने कहा कि मैं पन्द्रह दिन में वापस आ जाऊँगा। बालि भीतर पैठा। बालि के चरित्र में यह कमी है।

बालि में साहस तो बहुत है पर अतिरिक्त आत्मविश्वास भी है और इसीलिए बालि ने एक भूल कर दी कि सुग्रीव से उसने यह कह दिया कि पन्द्रह दिन में मैं सबको हरा दूँगा। इसके साथ-साथ यह घोषणा कर दी कि अगर पन्द्रह दिन में भी मैं न लौटूँ तो समझ लेना कि मैं मारा गया। बालि का यही गणित सही नहीं हुआ। जब बालि उसको मारता है तो उसके रक्त की धारा निकलती है और सुग्रीव ने

जब रक्त की धारा देखी तो उसका स्वभाव सामने आ गया। भगवान् ने पूछा कि जब तुमने रक्त की धारा देखी तो तुम्हारे ऊपर क्या प्रभाव पड़ा? क्या तुमने सोचा कि भाई लड़ रहा है तो हम भी भीतर घुस जायँ और लड़ें? सुग्रीव ने कहा कि महाराज! मैंने तो सीधी गणित कर ली कि शायद बालि मारा गया और जब इन्होंने बालि को मार दिया तो मुझे भी मार ही देंगे। इसलिए यहाँ से भाग जाना ही ठीक है। यही भगोड़ेपन की वृत्ति है, जो सुग्रीव के चरित्र में विद्यमान है।

सुग्रीव शुद्ध विषयी जीव हैं, जिसके चरित्र में साहस की भी कमी है। सुग्रीव जब भगवान् को देखता है, तब भी उसके मन में भ्रम होता है कि ये बालि के भेजे हुए दो राजकुमार मुझे मारने आये हैं। ईश्वर के विषय में जिसकी दृष्टि इतनी भ्रान्त है कि वह ईश्वर को शत्रु के रूप में देख रहा है। इसीलिए जब विभीषण भगवान् की शरण में आये तब सुग्रीव ने ही विरोध किया। यह भी विचित्र बिडम्बना है कि सुग्रीव की स्थिति क्या विभीषण के ऊपर थी? पर क्रम कुछ उलट गया।

प्रस्तुत प्रसंग का सूत्र यह है कि एक ने भगवान् को कृपा से पाया और दूसरे ने भगवान् को साधन से पाया। कृपामार्ग से भगवान् की प्राप्ति सुग्रीव को हुई और साधनमार्ग से भगवान् की प्राप्ति विभीषण को हुई। सुग्रीव का तो संकल्प था कि यदि बालि के भेजे हुए राजकुमार हों तो मैं तो एक ही काम कर सकता हूँ कि–

पठए बालि होहिं मन मैला।
भागौं तुरत तजौं यह सैला।।४/०/५

ऐसा व्यक्ति जो ईश्वर को प्राप्त करने जा रहा है, न उसके जीवन में वीरता है, न उसके जीवन में कोई सद्‌गुण हैं, फिर भी बड़ी अद्‌भुत बात है जो हनुमान्‌जी ने कहा–

नाथ सैल पर कपिपति रहई।
सो सुग्रीव दास तव अहई।।४/३/२

अरे! सुग्रीव कहाँ के राजा हैं? राज्य भी छिन गया, पत्नी भी छिन गयी, न तो वे बेचारे कहीं के राजा थे, न कोई सम्पत्ति थी, न कोई परिवार था, पर हनुमान्‌जी ने उनका जब परिचय दिया तो यही कहकर

दिया कि वे बन्दरों के राजा हैं। हनुमान्‌जी ने श्रीराम के शब्दकोश से उनको राजा कहा था, क्योंकि जब श्रीराम का राज्य छिन गया तो उन्होंने कौसल्या अम्बा से कहा था कि–

पिताँ दीन्ह मोहि कानन राजू।२/५२/६

जैसे राजा आप हैं, वैसे ही राजा ये भी हैं। पुनः कहा कि सुग्रीव आपके दास हैं तो कौन-सी दासता की है, कौन-सी सेवा की है? हनुमान्‌जी ने कहा कि प्रभो! आपके यहाँ दास की जो परिभाषा है, उसके अनुसार मैंने ठीक कहा है। संसार में तो दास उसको कहते हैं कि जो सेवा करे, लेकिन आप जिस प्रकार के सेवकों की खोज में रहते हैं, उसका रहस्य श्रीभरतजी ने खोल दिया, उन्होंने चित्रकूट में कहा कि प्रभु! ऐसे स्वामी तो मिलेंगे कि जो सेवक को सेवा कराने के लिए खोजते हैं, लेकिन आपके जैसा स्वामी कहाँ मिलेगा कि जो–

को साहिब सेवकहि नेवाजी।२/२९८/५

भगवान् के मन में हुआ कि हम सेवा करें। भगवान् ने सोचा कि स्वामी बनकर सेवा करें कि सेवक बनकर? बड़ी दूर तक उन्होंने सोचा कि जब मैं सेवक बनकर जाऊँगा और किसी जीव से कहूँगा कि मैं सेवा करना चाहता हूँ तो यह सुनकर वह बेचारा तो घबड़ा जायेगा कि हम कैसे आपसे सेवा लें? हम आपसे सेवा नहीं ले सकते। इसलिए प्रभु ने सोचा कि पहले तो हम स्वामी बनें और स्वामी बनकर जीव से पूछें कि मेरी आज्ञा का पालन करोगे? हाँ, महाराज! जब हम सेवक हैं तो आज्ञा मानेंगे ही–

अग्या सम न सुसाहिब सेवा।२/३००/४

मैं आज्ञा का पालन करूँगा। तब भगवान् ने कहा कि मेरी आज्ञा यही है कि मैं जो कुछ सेवा करूँ, उसे चुपचाप स्वीकार कर लो, उसमें नहीं मत करना। ऐसे विलक्षण स्वामी हैं कि सेवक को सेवा कराने की आज्ञा दे दी। जब भगवान् राम को स्नान करने के लिए कहा गया तो उन्होंने आसन पर भरत को बैठा दिया, स्वयं पीछे खड़े होकर उनकी जटाओं को सुलझाने लगे, उनको स्नान कराने लगे तब श्रीभरत से पूछा कि क्यों तुमको कैसा लगा? श्रीभरत ने कहा कि प्रभु! आपको याद होगा कि

चित्रकूट में जो आपके विषय में मैंने कहा था, आज वह प्रत्यक्ष हो गया। भरत से सेवा लेने के स्थान पर वही तो सेवा करते हैं, श्रीभरतजी कहते हैं–

को साहिब सेवकहिं नेवाजी।
आपु समाज साज सब साजी।।
निज करतूति न समुझिअ सपनें।
सेवक सकुच सोचु उर अपनें।।२/२९८/५-६

यह प्रभु का स्वामित्व है। हनुमानूजी का रहस्य क्या था? बोले कि यदि सेवा करने वाले सेवक की जरूरत होती तब तो सुग्रीव को मैं बिल्कुल न बताता, लेकिन आपको तो सेवा लेने वाला सेवक चाहिए, तो सुग्रीव बिल्कुल ऐसे ही हैं। आप उनकी जितनी सेवा करना चाहें उतनी कर लें, कोई आपत्ति की बात नहीं है। आगे और कहा कि आप चलकर उनके साथ मैत्री कीजिए–

तेहि सन नाथ मयत्री कीजे।
दीन जानि तेहि अभय करीजे।।४/३/३

सुग्रीव दास हैं तो यह कहना चाहिए कि उसको सेवा में ले लीजिए। वे तो कह रहे हैं कि उनको मित्र बना लीजिए। सेवक को सेवक बनाने वाले तो बहुत हैं, पर सेवक को मित्र बनाने वाले तो आप जैसे उदार आप ही हैं। यह तो आपकी ही विशेषता हो सकती है कि सेवक को अपनी बराबरी का बना दें। साथ-साथ हनुमानूजी ने यह भी कहा कि जब मैं सेवक को मित्र बनाने के लिए कह रहा हूँ तो इसमें मेरा भी स्वार्थ है। सुग्रीव हैं सेवक, जब वह मित्र बन जायेगा तो सेवक का पद खाली हो जायेगा, तब वह पद मुझे दे दीजिएगा तो मेरा भी काम हो जायेगा। आपको चलने के लिए इसलिए कह रहा हूँ कि जब रोगी चल नहीं सकता तो वैद्य को ही चलकर रोगी के पास जाना पड़ता है। अगर इनमें साधन का बल होता तो मैं आपको वहाँ जाने की बात नहीं कहता। चलना माने साधन की ओर बढ़ना, जो असमर्थ जीव हैं, जो साधन शून्य हैं, जो इतना भगोड़ा है कि भागते-भागते थक गया है, अब तो आप ही कृपा कीजिए।

इसका अभिप्राय है कि ईश्वर की प्राप्ति का एक क्रम यह है कि या तो भाव हो या अभाव हो। भाव के द्वारा भी ईश्वर मिलेगा और अभाव के द्वारा भी मिलेगा। मुख्य बात यह है कि आपको अपनी असमर्थता की अनुभूति हो रही है कि नहीं? अगर आपको सामर्थ्य की अनुभूति हो रही है तो सामर्थ्य का सदुपयोग कीजिए और यदि असमर्थता की अनुभूति हो रही है तो उसे भगवान् के समक्ष निवेदन कीजिए। आपके घड़े में जल भरा हुआ है तो उसे पिलाकर दूसरों की प्यास बुझाइए और यदि आपका घड़ा खाली है तो उसको भगवान् के सामने रख दीजिए कि इसको तो आपको भरना है।

कृपामार्ग का तात्पर्य है कि कृपा की आवश्यकता ही मनुष्य को तब होती है, जब अपने आपमें साधना का अभाव हो। सुग्रीव का चरित असमर्थता और अभाव का चरित है। ऐसा होते हुए भी अन्त में वे भगवान् को प्राप्त कर लेते हैं। विभीषण ने तो लंका का राज्य छोड़ा और राज्य छोड़कर वे भगवान् के पास आ गये, पर सुग्रीव के पास तो कुछ था ही नहीं, वह क्या छोड़ेगा? जिसने कुछ नहीं छोड़ा, कोई त्याग नहीं किया, भगवान् ही स्वयं उसके पास पहुँच गये।

प्रसंग आता है कि जब हनुमानूजी सुषेण वैद्य को लाये तो सुषेण वैद्य तो अपने घर में सो रहे थे। उस समय हनुमानूजी का कर्तव्य था कि उनको जगाते और साथ में ले आते, पर उन्होंने जगाया नहीं, सोते हुए को भी गोद में नहीं उठाया। उनके पूरे घर को ही उठा लाये। क्योंकि आप जिसको पाना चाहते हैं, उनको घर-बार छोड़ने की क्या आवश्यकता है? सुग्रीव भी अभावग्रस्त है, पर यह भी ध्यान रखिएगा कि इतना होते हुए भी हनुमानूजी से बढ़कर कोई साधन सम्पन्न नहीं है। फिर भी हनुमानूजी ने ही सदा सुग्रीव के चरणों में प्रणाम किया, बात उल्टी हो गयी। विषयी के चरणों में सिद्ध प्रणाम करता है, हनुमानूजी सुग्रीव की प्रार्थना करते हैं–

तब सुग्रीव चरन गहि नाना।
भाँति बिनय कीन्हे हनुमाना।।७/१८/७

प्रभु ने पूछा कि तुम सुग्रीव को इतना सम्मान क्यों देते हो? हनुमानूजी

ने कहा कि प्रभो! मैं तो हर दृष्टि से जब देखता हूँ तो मुझे लगता है कि सुग्रीव से बढ़कर सौभाग्यशाली कौन होगा? भक्त लोग आपकी याद क्यों किया करते हैं? मैंने सुना है कि आप बड़े भुलक्कड़ हैं। गोस्वामीजी ने 'विनय-पत्रिका' में कहा कि प्रभु चार वस्तुएँ भूल जाते हैं–

१. **निज कृत हित**। अपना किया गया भला और–

२. **अरि कृत अनहितउ**। शत्रु के द्वारा किया गया बुरा और–

३. **दास दोष**। सेवक का दोष और–

४. **सुरति चित रहति न किए दान की**। और अपने किये हुए दान की स्मृति नहीं रहती। इन चार बातों को प्रभु भूल जाया करते हैं। प्रभो! आपका स्वभाव यदि किसी के लिए बदला तो केवल सुग्रीव के लिए बदला। हम लोगों के लिए तो नहीं बदला। मैं तो आपके पास आया तो जब तक ब्राह्मण से बन्दर नहीं बन गया, आपने दूर ही रखा, फिर हृदय से लगाया तो पूछते रहे कि अपना परिचय दो, पर कितनी अनूठी बात हो गयी! सुग्रीव आपको भूल गये, विषयों में डूब गये फिर भी आप उसको नहीं भूले! तो महाराज जिसको आप न भूलें वह बड़ा है कि जो आपको याद करता है वह बड़ा है? जिसकी आपको इतनी याद बनी रहती है, हमको तो वही बड़ा लग रहा है।

प्रभु का सब स्वभाव सुग्रीव के लिए बदल गया, क्योंकि प्रभु के मुख से मैंने पहले यह कभी नहीं सुना कि मैंने तुम्हारे लिए यह किया, तुम्हारे लिए वह किया और दूसरी बात यह कि यह बात तो सभी जानते थे कि आप बड़े शीलवान् हैं, बड़े क्षमाशील हैं, पर जब आपको क्रोध आ गया, पर वह क्रोध भी कितना उदार था? जीव जब आपको भूल गया तो इसमें आपकी क्या हानि थी? सुग्रीव का क्या महत्त्व था? जो अपने ही परिवार की रक्षा नहीं कर पाया, वह क्या कर सकता था? आपको तो कोई आवश्यकता नहीं थी, लेकिन इतना होते हुए भी आपके मन में जब क्रोध आ गया, आपके स्वभाव में जब यह परिवर्तन आ गया तो इससे मुझको लगता है कि प्रभु! आपको सुग्रीव का कितना ध्यान था, कितना अपनापन था? आपका यह स्वभाव कभी नहीं देखा

कि आप ऐसा कहें कि मैंने यह किया, वह किया, यह किया, पर आप अपना शील-स्वभाव सुग्रीव के सन्दर्भ में भूल गये और आपने लक्ष्मण से यही कहा कि लक्ष्मण! चार महीने हो गये, सुग्रीव नहीं आया? लक्ष्मणजी ने कहा कि आपका जैसा स्वभाव है, उसमें यह कोई आश्चर्य थोड़े ही है! आपने ही कहा था कि जाओ! राज्य करो तो वह राज्य कर रहा है, भोगों को भोग रहा है–

सुग्रीवहुँ सुधि मोरि बिसारी।
पावा राज कोस पुर नारी।।४/१७/४

आपको यदि कोई भेंट दे तो आप भेंट लें, पर भेंट देने वाले को तो आप याद रखें। उसके प्रति तो कृतज्ञता और स्नेह बढ़ेगा। भगवान् हमें कितना देते हैं? भगवान् से इतना लेने के बाद भी यदि हम उसे भूलने लगें! भगवान् ने कहा कि अरे! सुग्रीव ने भी मुझे भुला दिया! मैंने उसके लिए क्या नहीं किया?–

पावा राज कोस पुर नारी।।

लक्ष्मणजी से कहा कि–

जेहिं सायक मारा मैं बाली।
तेहिं सर हतौं मूढ़ कहँ काली।।४/१७/५

लक्ष्मणजी प्रसन्न तो हुए, पर 'कल' शब्द सुनकर प्रसन्नता में कमी रह गयी, क्योंकि यदि सचमुच मारना होता तो इसे कल पर क्यों डालते? क्या इसके लिए सेना जुटानी है क्या? उसको मारने में क्या रखा है? और फिर आप क्यों मारेंगे? मैं तो हूँ ही, मैं अभी जाता हूँ और उसको मार आता हूँ। तब उस क्रोध का रहस्य खुल गया, उस क्रोध में जो करुणा और प्यार था, वह प्रकट हो गया कि जब प्रभु ने देखा कि लक्ष्मणजी तो सुग्रीव को मारने के लिए जा रहे हैं, तो तुरन्त लक्ष्मण का हाथ पकड़ लिया और कहा कि सुग्रीव डरपोक है, जब उसका डर बालि के मरने से मिट गया तो मुझे वह भूल गया। अब फिर उसको डरा दो, लेकिन केवल डराना है, मारना नहीं है। डराने में भी मर्यादा है कि जितना डरपोक है उतना ही डराना है। इतना मत डराना कि भाग खड़ा हो। ऐसा डराना कि इधर ही लौटकर आये, भाग न जाय। डराने का अर्थ ईश्वर को अपने से

दूर करना नहीं है, पास बुलाना है–

तब अनुजहि समुझावा रघुपति करुना सींव।
भय देखाइ लै आवहु तात सखा सुग्रीव।।४/१८

सुग्रीव मेरा मित्र है, अपना है, मैं जो क्रोध कर रहा हूँ, यह स्नेह के कारण कर रहा हूँ, उसको बुलाने के लिए कर रहा हूँ। हनुमान्‌जी जब प्रभु के स्वभाव में यह परिवर्तन पाते हैं तो सोचते हैं कि कभी-कभी साधन करने वाले को यह भ्रम हो जाता है कि मैंने प्रभु को पाया है तो अपने पुरुषार्थ पर अभिमान हो जाता है कि अपनी साधना के बल पर मैंने ईश्वर को पाया है, लेकिन यदि सुग्रीव के प्रसंग पर दृष्टि डालें तो हमें साधना का अभिमान तो कभी होगा ही नहीं–

जब कब निज करुना-सुभावतें, द्रवहु तौ निस्तरिये।
तुलसिदास बिस्वास आन नहिं कत, पचि-पचि मरिये।।
–विनय-पत्रिका, १८६/६

सुग्रीव की स्थिति तो ऐसी विचित्र है कि क्या कहा जाय? जब भगवान् ने सुग्रीव से मित्रता कर ली और बालि वध की प्रतिज्ञा भी कर ली, पर सुग्रीव को विश्वास ही नहीं है कि ये बालि को मार पायेंगे। जीव ने भगवान् की परीक्षा ली। सुग्रीव ने भगवान् की परीक्षा ली, इसमें भी सुग्रीव का ही चमत्कार था। सुग्रीव ने कहा कि इन सात ताल के वृक्षों को एक ही बाण से अगर आप वेध दें और दुन्दुभि राक्षस की हड्डियों के ढ़ेर को अपने पैर के नाखून से इतने योजन दूर फेंक दें तब मैं समझूँगा कि आप बालि को मार सकते हैं। भगवान् रुष्ट हो सकते थे कि तुम मुझ पर सन्देह करते हो, विश्वास की भी तुममें कमी है, नहीं मानते हो तो जाओ, पर भगवान् ने तुरन्त कहा कि जैसे तुम मानो हम वैसे ही मनायेंगे और भगवान् ने परीक्षा दी–

दुंदुभि अस्थि ताल देखराए।
बिनु प्रयास रघुनाथ ढहाए।।
देखि अमित बल बाढ़ी प्रीती।
बालि बधब इन्ह भइ परतीती।।४/६/१२-१३

जब भगवान् ने कहा कि अब जाओ और बालि के आगे गर्जना

करो तो सुग्रीव ज्ञान-वैराग्य की बात करने लगा कि मुझे कुछ नहीं चाहिए, अब आप ऐसी कृपा कीजिए कि हम सब कुछ छोड़कर आपका भजन करें–

सुख संपति परिवार बड़ाई।
सब परिहरि करिहउँ सेवकाई।।४/६/१६

भगवान् मन ही मन बहुत हँसे कि सुग्रीव मिथ्या ज्ञान-वैराग्य की बातें कर रहा है। जब भगवान् ने कहा कि जाकर बालि को ललकारो! तब सुग्रीव ने पूछा कि बालि को कौन मारेगा? भगवान् ने कहा कि मैं मारूँगा। पूछा कि बालि से लड़ेगा कौन? भगवान् बोले कि लड़ोगे तुम! शायद तुम्हारे मन में यह आये कि मैं ही बालि को हरा देता। पहले लड़कर तुम देख लो और जब असमर्थता की अनुभूति होगी तब मैं मारूँगा। जब सुग्रीव गया तो क्या हुआ? पहले तो सुग्रीव कह रहे थे कि बालि तो मेरा हितैषी है जिसकी कृपा से आपसे मिलन हुआ। युद्ध में जाने पर बालि का पहला मुक्का लगते ही वे तुरन्त भागे और प्रभु के पास आये। लक्ष्मणजी ने कहा कि प्रभु! व्यक्ति का स्वभाव नहीं छूटता, देख लीजिए–

तब सुग्रीव बिकल होइ भागा।
मुष्टि प्रहार बज्र सम लागा।।४/७/३

आपने मित्र बना लिया, फिर भी इसका भागना छूटा नहीं। प्रभु ने हँसकर कहा कि लक्ष्मण! तुम देखते नहीं हो? भागना तो नहीं छूटा, पर भागकर मेरे पास ही तो आया है और कहीं तो नहीं गया। तुम भागने को क्यों देख रहे हो? भागकर कहाँ गया? इस पर तुम्हारी दृष्टि जानी चाहिए। सुग्रीव को अपनी असमर्थता का ज्ञान हो गया। हनुमान्‌जी सन्त हैं, उनको भगवान् की कृपा के रहस्य का, भगवान् के उदार स्वभाव का पता है और सुग्रीव में असमर्थता है, अभाव है। भगवान् प्यार से, क्रोध से, सुग्रीव को अपना बनाये रखते हैं, उन्हें अपना मित्र बनाते हैं।

दूसरी ओर प्रभु में विभीषण से भी मिलने की इच्छा है। वे समुद्र के किनारे रुके हुए हैं, साधक से कहते हैं कि भई! तुम तो चल सकते

हो, बाल्यावस्था से तुमने साधन किया है, मैं इतनी दूर से चलकर आया, पर समुद्र को पार करके तो अब तुम्हीं को आना पड़ेगा। आध्यात्मिक अर्थों में इसका अभिप्राय है कि समुद्र देहाभिमान है और विभीषण जब अपने को देह मानेंगे तो इसका परिणाम होगा कि उनको ऐसा लगेगा कि रावण मेरा भाई है। रावण को वह छोड़ नहीं पायेगा। भगवान् का अभिप्राय है कि जब तुमने साधन किया है तो कम से कम उस सम्बन्ध का मान छोड़ करके तुम मेरे पास आओ। तब सचमुच उन पर रावण का प्रहार होता है और उस प्रहार में भी वे प्रभु का सन्देश सुनते हैं।

रावण के चरणों का प्रहार लगते ही विभीषण को प्रभु के चरणों की याद आ जाती है। संसार का प्रहार होने पर ईश्वर की याद आ जाना ही ईश्वर की सबसे बड़ी अनुकम्पा है और यह साधन वृत्ति का लक्षण भी है। सांसारिक व्यक्ति प्रहार से बदला लेने के लिए व्यग्र हो जाता है और जो साधक है, वह प्रहार के बाद उसमें भगवान् का क्या सन्देश है? भगवान् क्या चाहते हैं? यह देखता है। विभीषण साधक हैं, उसके जीवन का यही सत्य है कि वह रावण के प्रहार में भगवान् का सन्देश पाता है और तब वह रावण की सभा में घोषणापूर्वक यह कहते हैं–

रामु सत्य संकल्प प्रभु सभा कालबस तोरि।
मैं रघुबीर सरन अब जाऊँ देहु जनि खोरि।।५/४१

कैसा विश्वास भगवान् में है? यह विभीषण और सुग्रीव में अन्तर है। सुग्रीव को भगवान् मिल गये, तब भी उनको विश्वास दिलाना पड़ा और विभीषण की आज तक भगवान् से भेंट नहीं हो पायी फिर भी इतना विश्वास है कि हमारे प्रभु तो साक्षात् ईश्वर हैं, मैं उनकी शरण में जा रहा हूँ फिर वे प्रभु की ओर चलते हैं। उनमें साधना का क्रम है–पहले वे देहाभिमान से मुक्त हुए, जिसे वे नहीं छोड़ पाते थे, उसका उन्होंने त्याग किया और देहाभिमान के समुद्र को पार करके पहुँच गये, पर सबसे बढ़िया बात क्या है? जब सुग्रीव को यह समाचार मिला तो भगवान् से कहा कि–

आवा मिलन दसानन भाई।५/४२/४

स्वयं पर तो वे कृपा चाहते हैं, पर जब दूसरे को देखते हैं तो बड़ी कठोर दृष्टि हो जाती है। अधिकांश लोगों का स्वभाव यही है कि अपने लिए दया और दूसरों के लिए न्याय! वे कहते हैं कि प्रभु! आपने ध्यान दिया कि रावण का भाई आया हुआ है। हमारे प्रभु यदि शीलवान् न होते तो कह देते कि बालि का भाई आ सकता है तो रावण का भाई भी आ सकता है, लेकिन नहीं बोले। प्रभु ने पूछा कि तुम क्या चाहते हो? सुग्रीव ने कहा कि महाराज!–

जानि न जाइ निसाचर माया।
कामरूप केहिं कारन आया।।
भेद हमार लेन सठ आवा।
राखिअ बाँधि मोंहि अस भावा।।५/४२/६-७

यह रावण का भेदिया है, इसे बाँधकर रख लीजिए। प्रभु ने कहा कि मित्र! तुमने मुझसे नहीं पूछा कि मुझे क्या लगता है? सुग्रीव ने कहा कि महाराज! आपमें सब विशेषताएँ हैं, पर आपमें खोटे-खरे की परख नहीं है। हनुमान्जी ने सुना और समझ गये कि अगर खोटे-खरे की परख होती तो सुग्रीव को शरण में ले सकते थे क्या? प्रभु ने विनोद करते हुए कहा कि मित्र! हमारी और तुम्हारी दोनों की आँख कमजोर हैं। तुम तो कह ही रहे हो कि आपको खोटे-खरे की परख नहीं है और तुम्हारी तो आँख भी कमजोर ही है, क्योंकि तुमने मुझको भी पहले देखा था तो बालि का भेजा हुआ समझ लिया था, तुम भेदिया बहुत जल्दी मान लेते हो। तुमने हनुमान्जी से ही कहा था कि जाकर पता लगाओ। हनुमान्जी की आँखें ठीक हैं, इन्हीं से पूछ लिया जाय कि विभीषण उनकी दृष्टि में कैसा है? तब प्रभु एवं सुग्रीव ने हनुमान्जी की ओर देखा, दोनों श्रीहनुमान्जी से समर्थन चाहते हैं। श्रीहनुमान्जी अगर कह दें कि विभीषण अच्छे हैं तो सुग्रीव का खण्डन होता है और कह दें कि विभीषण बुरे हैं तो प्रभु का खण्डन होता है। हनुमान्जी ने बुद्धिमानी का उत्तर देते हुए कहा कि महाराज! यह प्रश्न ही ठीक नहीं है कि विभीषण खोटे हैं कि खरे हैं? शरणागति न्यायालय है कि औषधालय है? यदि न्यायालय है तो न्याय कीजिए और अगर औषधालय है तो

दवा कीजिए। कोई औषधालय में आये तो उससे यह मत पूछिये कि उसका स्वास्थ्य ठीक है कि नहीं। अगर ठीक होता तो बेचारा आता ही क्यों? रोगी को देखकर दवा ही देनी चाहिए। मैं तो यही कहूँगा कि–

खोटो खरो सभीत पालिये सो, सनेह सनमान सों।

–गीतावली, ५/३३/३

चाहे वे खोटे हैं या खरे हैं, आपके पास आये हुए हैं, आप उन्हें स्वीकार करें। भगवान् श्रीराम कृपामार्ग से स्वयं चलकर गये, पर यहाँ पर अब भी रुके हुए हैं। कहा कि हनुमान्‌जी और अंगद जायें और उनको लेकर आयें। दोनों लेकर आते हैं। विभीषण ने प्रभु के चरणों में प्रणाम किया। प्रभु उठे और–

भुज बिसाल गहि हृदयँ लगावा।५/४५/२

विभीषण को कसकर हृदय से लगा लिया। तब प्रभु ने सुग्रीव की ओर देखा। सुग्रीव को बड़ा बुरा लगा कि मैंने कहा था कि बाँधकर रखिए, ये तो हृदय से लगा रहे हैं। भगवान् ने सुग्रीव की ओर देखकर कहा कि मित्र! बिल्कुल बुरा मत मानना! तुमने जो कहा था उसी आज्ञा का पालन मैंने किया है। तुमने यह तो नहीं कहा था कि मार दीजिए। तुमने यह भी नहीं कहा था कि भगा दीजिए। तुमने यही तो कहा था कि इसको बाँधकर रखिए तो जब बाँधकर ही रखना है तो भुजा के बन्धन में बाँधकर रखना ही ठीक रहेगा, रस्सी के बन्धन को तो व्यक्ति छुड़ाने की चेष्टा करता है, पर भुजा का बन्धन तो ऐसा प्यार का बन्धन है कि उससे छूटने की इच्छा ही नहीं होती। विभीषण भगवान् को पाकर धन्य हो जाते हैं।

जासु नाम भव भेषज हरन घोर त्रय सूल।
सो कृपाल मोहि तो पर सदा रहउ अनुकूल।।७/१२४क

॥बोलिए सियावर रामचन्द्र की जय॥

|| श्रीराम: शरणं मम ||

भगवत्प्राप्ति के लिये क्या किसी एक विशेष प्रकार के चरित या सद्गुण की आवश्यकता है ?

श्रीरामचरितमानस में न जाने कितने पात्रों को श्रीराम की प्राप्ति हुई। यदि उन पर दृष्टि डालें तो उनके आचार में, स्वभाव में एवं गुण में एक-दूसरे से भिन्नता ही भिन्नता दिखायी देती है।

प्रभु श्रीराम ने जिन पात्रों से मित्रता (Friendship) स्थापित की, उनको सूक्ष्म एवं गूढ़ मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करते हुए, इस अंतर-मंथन को **युग तुलसी मानस मर्मज्ञ श्री रामकिंकरजी महाराज** इस ग्रन्थ में प्रस्तुत करते हैं।

- मन्दाकिनी श्रीरामकिंकरजी



☆ पूज्य पंडित रामकिंकरजी श्रवण विश्वविद्यालय के आधुनिक कुलपति हैं।

- पद्मश्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

☆ अध्यात्म का जितना मार्मिक और अधिकाधिक विश्लेषणात्मक विवेचन पूज्य पंडित रामकिंकरजी करते हैं, उतना वैदुष्यपूर्ण विवेचन साम्प्रतिक कथा वाचकों में और कोई नहीं करता।

- आचार्य विष्णुकांत 'शास्त्री'

☆ भारत में इस प्रकार का चरित्र विश्लेषक मैंने दूसरा नहीं देखा।

- डॉ. अम्बा प्रसाद 'सुमन'